शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 अगस्त 2013

दीघनिकाय के अग्गञ्ञसुत्त में वर्णित समाज व्यवस्था

विकास सिंह, शोधार्थी
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली -110067

हदं दानी भिक्खवे, आमंतयामि वो।
वयधम्मा संखारा, अप्पमादेन संपादेथ॥[1]

भगवान् बुद्ध के ये अन्तिम वचन न केवल भिक्खुओं के लिये थे, अपितु सर्वजन हितकारी थे। सब वस्तुओं को नाशधर्मी बताते हुए बुद्ध ने अप्रमाद युक्त होकर निर्वाण प्राप्त करने की बात कही थी। संसार में दुखों से छुटकारा दिलाना ही बुद्ध का अन्तिम लक्ष्य नहीं था। यदि देखा जाये तो बौद्ध धर्म, धम्म के रूप में विकसित एक बहुमुखी आन्दोलन था। प्रोफेसर रोमिला थापर के शब्दों में सामाजिक सन्दर्भ में देखा जाये तो बौद्ध धर्म को अन्य धर्मों की तरह मात्र एक और धर्म नही माना जा सकता। यह एक ऐसे व्यापक आन्दोलन का परिणाम था, जो व्यक्तिगत विश्वासों से लेकर सामाजिक मान्यताओं तक जीवन के अनेक पहलुओं को बदल रहा था। यह एक ऐसा सामाजिक बौद्धिक आन्दोलन था, जो अनेक रूपों में व्यक्त हो रहा था और जिसकी झलक तात्कालिक चिन्तन और जीवन में स्पष्ट थी।[2]

वैदिक आर्यों ने भारत में एक सामाजिक व्यवस्था कायम की जिसे वर्ण व्यवस्था कहा गया। डॉ. राधाकृष्णन् भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के बारें में कहते हैं कि मानव समाज भिन्न प्रकार की श्रेणियों से बना है और उनमें सबका अपना महत्त्व है।[3] वर्णव्यवस्था के प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में मिलते हैं। वहाँ कहा गया है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहुराजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽजायत॥[4]

अर्थात् विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से राजा या क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य तथा पैरों से शूद्र पैदा हुए हैं। भारतीय समाज की संरचना के बारें में जानकारी प्रदान करने वाला यह मंत्र भारत के इतिहास का प्रथम उदाहरण है। मंत्र से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों के अस्तित्व के बारें में ज्ञान होता है। डॉ. धर्मकीर्ति के मतानुसार ऋग्वेद-कालीन भारतीय समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों का अस्तित्व एक दूसरे के सदृश था। प्रत्येक वर्ण के सदस्य को यह अधिकार प्राप्त था कि वह अपनी मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं के अनुकूल किसी भी वर्ण का सदस्य बन सके। इन वर्णों में कोई स्पष्ट विभाजन नहीं था। यदि कोई विभाजन था, तो वह आर्य तथा दास वर्ण या दस्यु के बीच था।[5]

कालांतर में ऋग्वेद द्वारा स्थापित वर्ण व्यवस्था संबंधी विचारों से भारतीय सामाज-व्यवस्था को

श्रेणीगत समाज व्यवस्था में परिवर्तित किया गया। परवर्ती काल में वर्ण से जाति का विकास मानव इतिहास का काला अध्याय साबित हुआ जिसे गौतम, वशिष्ठ प्रभृति धर्मसूत्रकारों तथा मनु, अत्रि, नारद, बृहस्पति इत्यादि स्मृतिकारों ने जटिल बना दिया, जो प्रथम बार कार्नवालिस के इण्डियन पैनल कोड (IPC) के सम्मुख लड़खड़ा गया तथा बाद में जब संविधान निर्माण का कार्य चल रहा था तब अनुच्छेद 14 से लेकर अनुच्छेद 32 तक मूल अधिकार नागरिकों को प्रदान कर, वेदों द्वारा स्थापित, मनु इत्यादि द्वारा पोषित समाज को दूषित करने वाली व्यवस्था को हमेशा के लिये कानूनी रूप से प्रतिबन्धित कर दिया गया।

न केवल वेद अपितु ज्ञान राशि का सागर कहे जाने वाले श्रीमद्भग्वद्गीता में भी कृष्ण वर्णव्यवस्था का समर्थन करते हैं। 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं'[6] कहकर वर्णों की श्रेणी को स्वीकारा। आधुनिक समय में जहाँ ज्योतिबा फूले, छत्रपति शाहू, पेरियार तथा डॉ. बी. आर. अम्बेडकर जैसे समाज सुधारकों नें ब्राह्मण सर्वोच्चता की समर्थित नियमावली वर्ण व्यवस्था को ही नकार दिया तथा नवभारत के समाज का आदर्श रखा। उसी तरह लगभग 2600 वर्ष पूर्व जब भगवान् बुद्ध और महावीर के सन्देशों से भारत में पुनर्जागरण हुआ था, उस समय में भी वर्ण व्यवस्था को नकारा गया। गौतम बुद्ध नें सदियों से चले आ रहे असमतामूलक समाज को नकार दिया तथा समता मूलक समाज का आदर्श रखा। उन्होंने इसके लिये वर्णव्यवस्था का खण्डन किया तथा समानांतर समाज (Horizontal Society) का आदर्श रखा। भगवान् बुद्ध ने बताया कि मानव मात्र समान हैं और कोई उच्च वर्ण में जन्म लेने से महान नहीं होता, अपितु अपने सत्कर्मों द्वारा ही उसकी महत्ता की पुष्टि होती है।[7] बुद्ध के ये विचार अगञ्ञसुत्त में निबद्ध हैं।

अगञ्ञसुत, सुत्तपिटक के दीघनिकाय के तृतीय वग्ग 'पाथिक वग्ग' का चतुर्थ सुत्त है। वैसे यह दीघनिकाय का 27वां सुत्त है। अगञ्ञ शब्द का अर्थ उदात्त, उच्च अथवा प्रधान है।[8] अतःएव इस सुत्त में मानव प्रधानता का वर्णन मिलता है किसी एक वर्ग विशेष का नहीं। इस सुत्त से पता चलता है कि एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में मिगारमाता के पूर्वाराम विहार में विहार कर रहे थे। वाशिष्ठ और भारद्वाज प्रवज्या की इच्छा से भिक्खुवर्ग के साथ परिवास कर रहे थे।[9] इस सुत्त में भगवान् बुद्ध ने वासेट्ठ (वासिष्ठ) व भारद्वाज ब्राह्मणों को सम्बोधित करते हुये सामाजिक संरचना का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। भगवान् बुद्ध द्वारा बतलाई गई भारतीय समाज की संरचना को सुव्यवस्थित ढ़ग से जानने के लिये इसे चार भागों में विभाजित किया जा सकता है, यथा वर्ण-व्यवस्था का खण्डन, मनुष्य जाति की प्रगति, चारों वर्णों का निर्माण तथा जन्म नहीं कर्म की प्रधान है।

वर्ण-व्यवस्था का खण्डन

बुद्ध के काल से पूर्व तक समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार श्रेणियों में क्रमशः उत्तरोत्तर बंटा हुआ था। तत्कालीन ब्राह्मण लोग अपने आप को श्रेष्ठ मानते थे, क्योंकि वे श्रेष्ठ वर्ण, शुक्ल वर्ण, शुद्ध, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए पुत्र, ब्रह्मजात, ब्रह्मनिर्मित, ब्रह्मदायाद थे। ब्राह्मणेतर अन्य जन मुण्डी, श्रमण, नीच, काले,

भ्रष्ट और ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न होने के कारण नीच समझे जाते थे।[10] भगवान् बुद्ध इसका खण्डन करते हुए तर्क देते हैं कि सामान्य स्त्रियों की भाँति ब्राह्मण स्त्रियाँ भी ऋतुनी होती हैं, गर्भ धारण करती हैं, प्रसव करती हैं, बच्चों को दूध पिलाती हैं। तब ब्रह्मा के मुख से जन्म की बात झूठी व मिथ्या प्रचार मात्र है। ब्राह्मण मिथ्या भाषण करके बहुत अ-पुण्य कमाते हैं।[11]

क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र चार वर्ण हैं। चारों वर्णों में अच्छे व बुरे कर्मों को करने वाले लोग पाये जाते हैं। कुछ क्षत्रिय जीव हिंसा करते हैं, मिथ्याचार करते हैं, झूठ बोलते हैं, मिथ्या दृष्टि वाले होते हैं। इस तरह जो धर्म बुरा अथवा अकुशल, सदोष, असेवनीय, अनार्य, कृष्ण, बुरे फल वाला तथा विद्वानों द्वारा निन्दनीय है, उसे वे करते देखे जाते हैं।[12] इसी तरह कितने ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र भी धर्मरहित कर्म करते हुए देखे जाते हैं।

कुछ क्षत्रिय जीव हिंसा से विरत देखे जाते हैं, चोरी करने से विरत देखे जाते हैं, सम्यक् दृष्टि वाले होते हैं। इस तरह जो धर्म अच्छा अथवा कुशल, निर्दोष, सेवनीय, आर्य, अच्छे फल वाला तथा विद्वानों द्वारा वन्दनीय है, उसे वे करते देखे जाते हैं।[13] वैसे ही ब्राह्मण, शूद्र एवं वैश्य भी श्रेष्ठ कर्म करते हुए देखे जाते हैं। मानव में धर्म ही श्रेष्ठ है। धर्म इस जन्म में तथा परजन्म में, दोनों में ही श्रेष्ठ है।[14]

मनुष्य जाति की प्रगति

प्रलय के बाद सृष्टि की कल्पना साकार की गयी है। सृष्टि होने तक अधिकतर प्राणी मनोमय, प्रीतिभक्ष, स्वयंप्रभ, शुभस्थायी, आकाशचारी होकर रहते हैं। जब पहली बार सृष्टि होती है, तो न चाँद होता है न सूरज, न नक्षत्र, न तारे, न रात, न दिन, न मास, न पक्ष, न ऋतु, न वर्ष होते हैं। सर्वत्र जल ही जल होता है। घना तिमिर फैला होता है। उस समय स्त्री पुरुष का भेद भी नहीं आता है। सत्त्व मात्र ही उनकी संज्ञा होती है।[15]

सृष्टि के बहुत दिनों के बाद पानी पर रसा पृथ्वी फैली। यह दूध पर मलायी के समान थी। तभी कोई लालसी सत्त्व रसा पृथ्वी को अंगुली से चाटने लगा जिससे उसे तृष्णा उत्पन्न हुई।[16] दूसरे भी उसकी देखा-देखी वैसा करने लगे। क्रमशः पृथ्वी की स्वाभाविक प्रभा नष्ट होने लगी जिससे चाँद व सूर्य प्रकट हुये, तारे व नक्षत्र पैदा हुए। रात-दिन, मास-पक्ष अस्तित्व में आये।[17]

जो रसा पृथ्वी को बहुत दिनों तक खाते रहे, उनका शरीर कर्कश होने लगा, उनके वर्ण में विकार उत्पन्न हुआ जिससे कुछ सत्त्व सुन्दर व कुछ कुरूप होने लगे। सुन्दर अपने को श्रेष्ठ समझने लगे। जिससे रसा पृथ्वी अन्तर्धान होने लगी व सभी सत्त्व आज तक किसी भी सुरस वस्तु को देखकर चिल्लाने लगते हैं- अहो रस, अहो रस।[18]

रसा पृथ्वी के अन्तर्हित हो जाने पर अहिच्छत्रक (नागफनी) सी भूमि की पपडी प्रकट हुई। वह मक्खन की भाँति वर्ण सम्पन्न, गन्ध सम्पन्न व रस सम्पन्न थी। उसके लगातार सेवन से सत्त्वों के शरीर में कर्कशता आयी तथा वर्ण में विकार होने लगे। वर्ण के अभिमान से भूमि की पपड़ी अन्तर्धान हो गयी व भद्रलता प्रकट हुई। इसका भी नाश हुआ।[19]

भद्रलता के अन्तर्धान हो जाने पर अकृष्ट पच्य धान प्रादुर्भूत हुआ, वह चावल कण व तुष के बिना सुगन्धित था। जिसे शाम की शाम पकाते थे। शाम को लाये हुए अकृष्ट पच्य को प्रातराश के लिये तथा प्रातराश पर लाये गये को शाम को पकाकर खाते थे। अत्यधिक अकृष्ट पच्य खाने से स्त्री-लिंग तथा पुरुषों के पुरुष-लिंग पैदा हुए। स्त्री-पुरुष को, पुरुष-स्त्री को टकटकी लगाकर देखने लगा, जिससे शरीर में दाह (गर्मी) पैदा होने लगी। दाह के कारण मैथुन किया। उस समय लोग जिन्हें मैथुन करते देखते, उन पर कोई धूली फेंकता, कोई कीचड़ फेंकता। हट जा वृषली, हट जा वृषली जैसे संवाद करते।[20] मैथुन कर्म करने वाले सत्त्व को घर में या गाँव में मास मास आने की आज्ञा नहीं होती थी।

ऐसे समय किसी आलसी के मन में आया कि शाम सुबह दोनों समय धान क्यों लावे, एक ही बार दोनों समय के लिये धान लाया जा सकता है।[21] ऐसे- ऐसे करके अन्य सभी भी ऐसा करने लगे। कुछ सत्त्व दूसरे का धान चोरी करके खाने लगे, लोगों नें उन्हें दण्डित किया। तब आपस में लोग एकत्रित हुए। अपनी शालि की रक्षा के लिये एक व्यक्ति को सजा व शक्ति सौंपकर शालि का कुछ भाग देकर उसे राजा बनाने की बात कही गयी।

चारों वर्णों का निर्माण

जब शालि चोरी हो रही थी ऐसे समय सभी सत्त्व जो उनमें वर्णवान्, दर्शनीय, प्रासादिक व महाशक्तिशाली था, के पास जाकर विनती करने लगे कि वह उचितानुचित का ठीक से अनुशासन करे, निन्दनीय कर्मों की निन्दा करें। उचित कर्मों को बतलाये। इसके बदले वे उसे शालि का एक भाग देने को तैयार हुए। उस व्यक्ति ने भी इसे देने को स्वीकार कर लिया। उनका नाम महासम्मत या क्षेत्रों का अधिपति होने से क्षत्रिय, धर्म से दूसरों का रञ्जन करने के कारण राजा पड़ा।[22] इस तरह राज्य उत्पत्ति का सामाजिक समझौतावादी सिद्धान्त भारत में त्रिपिटकों में संरक्षित है, जो 16 -19वीं सदी में थॉमस हाब्स, जान लाक, व रूसो ने प्रचारित किया।

उन्हीं प्राणियों में से किसी के मन में यह हुआ कि प्राणी पाप धर्म में जा रहे हैं। उन्हें पाप धर्म छोड़ देने चाहिये। जिन्होंने पाप धर्म छोड़ (बहा) दिये वे ब्राह्मण कहलाये। ये जंगल में जाकर अकेले रहने लगे। भोजन गाँव से मांगकर करते थे। जंगल में पर्णकुटी बनाई गयी। ध्यान करने से इन्हे ध्यायक कहा गया।[23] जो पर्णकुटी में रहते जरूर थे किन्तु ध्यान नहीं करते थे। ये केवल ग्रन्थों को लिखते थे अतः ये अध्यायक कहलाये।[24]

उन्हीं प्राणियों में से कितने मैथुन कर्म करके नाना कर्मों में लग गये जिससे वैश्य नाम पड़ा।[25] क्षुद्र आचार वाले प्राणी शूद्र कहलाये।[26] इन्हीं चार मण्डलों में से श्रमण-मंडल की उत्पत्ति हुई।[27] इस प्रकार समाज के ये चार वर्ग स्थापित हुए। न कि ब्रह्मा के मुख इत्यादि से। इसी तरह चारों वर्णों से व्यक्ति श्रमण बन सकता था। उसे अपने गृहस्थ के जो भी कर्म थे छोड़ने पड़ते थे।

जन्म नहीं कर्म प्रधान है

भगवान् बुद्ध का मानना है कि जन्म कभी भी प्रधान नहीं होता । कर्म प्रधान होता है। जैसे क्षत्रिय की काया से दुराचार तथा मिथ्यादृष्टि हो

सकती है एवं वह नरक में उत्पन्न हो सकता है, वैसे ही ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र भी हो सकते हैं।[28] इसी तरह सम्यक् दृष्टि व काया से सदाचार करने पर स्वर्ग मिलता है। चारों वर्गों सहित श्रमण भी 37 बोधि-पाक्षिक (4 स्मृति प्रस्थान, 4 सम्यक् प्रधान, 4 ऋद्धि पाद, 5 इन्द्रियाँ, 5 बल, 7 बोध्यंग मार्ग, आर्याष्टांगिक मार्ग) धर्मों की भावना करके इसी लोक में निर्वाण को प्राप्त कर सकता है।[29]

अग्गञ्ञसुत्त में समाज व्यवस्था का विश्लेषण करने पर कहा जा सकता है कि धर्मसूत्र तथा स्मृति ग्रंथों में जहाँ वर्ण-व्यवस्था को महिमामण्डित किया गया, वहीं पालि साहित्य में इस अवधारणा को अप्राकृतिक व अमानवीय घोषित किया गया है। जहाँ वर्णव्यवस्था समाज को खण्डित करती है, वहीं बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में समाज को समानान्तर क्रम में रखकर समाज में एकता की बात उठायी गयी है। सार रूप में यदि कहा जाये तो बौद्ध धर्म में मनुष्य मात्र को जन्म से श्रेष्ठ नहीं, अपितु विद्या व आचरण से श्रेष्ठ स्वीकार करता है।[30]

संदर्भ-ग्रंथसूची

- *ऋग्वेदसंहिता, सायणभाष्यसहित (पाँच भाग),* वैदिकशोधमण्डल, पुण्यपत्तन, 1933-51.
- *गौतमधर्मसूत्राणि,* उमेशचन्द्र पाण्डेय (अनु.), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.सं. 2061.
- *दीघनिकाय (खण्ड 3),* शास्त्री, द्वारिकादास (सं. व अनु.), बौद्धभारती, वाराणसी, 2006.
- *वज्रसूची,* अश्वघोष, (सं.) वेबर, ए., बर्लिन, 1850.
- कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *पालि-हिन्दी कोश,* सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975.
- थापर, रोमिला, *अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन,* ग्रन्थ शिल्पी इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2010.
- धर्मकीर्ति, *बुद्धकालीन वर्ण व्यवस्था और जाति,* सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010
- सिंह, मदन मोहन, *बुद्धकालीन समाज और धर्म,* बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1972.
- Maung Tin, *The Student Pali-English Dictionary*, British Burma Press, Rangoon, 1920.

सन्दर्भ :

[1] *दीघनिकाय,* 2/3

[2] *अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन,* पृ. 2

[3] *गौतमधर्मसूत्राणि,* पृ.34

[4] *ऋग्वेद,* 10.90.12

[5] *बुद्धकालीन वर्ण व्यवस्था और जाति,* पृ. 187

[6] *श्रीमद्भगवद्गीता,* 4/13

[7] *बुद्धकालीन समाज और धर्म,* पृ.12

[8] *The Student Pali-English Dictionary*, p. 3

[9] एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। तेन खो पन समयेन

वासेट्ठभारद्वाजा भिक्खूसु परिवसन्ति भिक्खुभावं आकङ्खमाना। *दीघनिकाय,* 3.4

[10] ब्राह्मणोव सेट्ठो वण्णो, हीना अञ्ञे वण्णा। ब्राह्मणोव सुक्को वण्णो , कण्हा अञ्ञे वण्णा। ब्राह्मणाव सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा। ब्राह्मणाव ब्रह्मुनो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा। ते तुम्हे सेट्ठं वण्णं हित्वा हीनमत्थ वण्णं अज्झुपगता, यदिदं मुण्डके समणके इब्भे कण्हे बन्धुपादापच्चे। वही, 3.4

[11] ब्राह्मणानं ब्राह्मणियो उतुनियोपि गब्भिनियोपि विजायमानापि पायमानापि। ते च ब्राह्मणा योनिजाव समाना एवमाहंसु – 'ब्राह्मणोव सेट्ठो वण्णो, हीना अञ्ञे वण्णा; ब्राह्मणोव सुक्को वण्णो, कण्हा अञ्ञे वण्णा; ब्राह्मणाव सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणाव ब्रह्मुनो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा'ति। ते ब्रह्मानञ्चेव अब्भाचिक्खन्ति, मुसा च भासन्ति, बहुञ्च अपुञ्ञं पसवन्ति। वही, 3.4

[12] चत्तारोमे, वासेट्ठ, वण्णा – खत्तिया, ब्राह्मणा, वेस्सा, सुद्दा। खत्तियोपि खो, वासेट्ठ, इधेकच्चो पाणातिपाती होति अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु ब्यापन्नचित्तो मिच्छादिट्ठी। इति खो, वासेट्ठ, येमे धम्मा अकुसला अकुसलसङ्खाता सावज्जा सावज्जसङ्खाता असेवितब्बा असेवितब्बसङ्खाता नअलमरिया नअलमरियसङ्खाता कण्हा कण्हविपाका विञ्ञुगरहिता, खत्तियेपि ते इधेकच्चे सन्दिस्सन्ति। वही, 3.4

[13] खत्तियोपि खो, वासेट्ठ, इधेकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो, मुसावादा पटिविरतो, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो, फरुसाय वाचाय पटिविरतो, सम्फप्पलापा पटिविरतो, अनभिज्झालु अब्यापन्नचित्तो, सम्मादिट्ठी। इति खो, वासेट्ठ, येमे धम्मा कुसला कुसलसङ्खाता अनवज्जा अनवज्जसङ्खाता सेवितब्बा सेवितब्बसङ्खाता अलमरिया अलमरियसङ्खाता सुक्का सुक्कविपाका विञ्ञुप्पसत्था, खत्तियेपि ते इधेकच्चे सन्दिस्सन्ति। वही, 3.4

[14] धम्मोव सेट्ठो जनेतस्मिं, दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायञ्च। वही, 3.4

[15] एकोदकीभूतं खो पन, वासेट्ठ, तेन समयेन होति अन्धकारो अन्धकारतिमिसा । न चन्दिमसूरिया पञ्ञायन्ति, न नक्खत्तानि तारकरूपानि पञ्ञायन्ति, न रत्तिन्दिवा पञ्ञायन्ति, न मासड्ढमासा पञ्ञायन्ति, न उतुसंवच्छरा पञ्ञायन्ति, न इत्थिपुमा पञ्ञायन्ति, सत्ता सत्तात्वेव सङ्ख्यं गच्छन्ति। वही, 3.4

[16] अञ्ञतरो सत्तो लोलजातिको – 'अम्भो, किमेविदं भविस्सती'ति रसपथविं अङ्गुलिया सायि। तस्स रसपथविं अङ्गुलिया सायतो अच्छादेसि, तण्हा चस्स ओक्कमि। वही, 3.4

[17] तेसं सत्तानं सयंपभा अन्तरधायि। सयंपभाय अन्तरहिताय चन्दिमसूरिया पातुरहेसुं। चन्दिमसूरियेसु पातुभूतेसु नक्खत्तानि तारकरूपानि पातुरहेसुं। नक्खत्तेसु तारकरूपेसु पातुभूतेसु रत्तिन्दिवा पञ्ञायिंसु। रत्तिन्दिवेसु पञ्ञायमानेसु मासड्ढमासा पञ्ञायिंसु। मासड्ढमासेसु पञ्ञायमानेसु उतुसंवच्छरा पञ्ञायिंसु। एत्तावता खो , वासेट्ठ, अयं लोको पुन विवट्टो होति। वही, 3.4

[18] सत्ता रसपथविं परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्ठंसु। यथा यथा खो ते, वासेट्ठ, सत्ता रसपथविं परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्ठंसु, तथा तथा तेसं

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अगस्त 2013

सत्तानं (रसपथविं परिभुञ्जन्तानं) खरत्तञ्चेव कायस्मिं ओक्कमि, वण्णवेवण्णता च पञ्ञायित्थ। एकिदं सत्ता वण्णवन्तो होन्ति, एकिदं सत्ता दुब्बण्णा। तत्थ ये ते सत्ता वण्णवन्तो, ते दुब्बण्णे सत्ते अतिमञ्ञन्ति – 'मयमेतेहि वण्णवन्ततरा, अम्हेहेते दुब्बण्णतरा'ति। तेसं वण्णातिमानपच्चया मानातिमानजातिकानं रसपथवी अन्तरधायि। रसाय पथविया अन्तरहिताय सन्निपतिंसु। सन्निपतित्वा अनुत्थुनिंसु – 'अहो रसं, अहो रस'न्ति! तदेतरहिपि मनुस्सा कञ्चिदेव सुरसं लभित्वा एवमाहंसु – 'अहो रसं, अहो रस'न्ति! वही, 3.4

[19] सत्ता भूमिपप्पटकं उपक्कमिंसु परिभुञ्जितुं। ते तं परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्ठंसु। यथा यथा खो ते, वासेट्ठ, सत्ता भूमिपप्पटकं परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्ठंसु, तथा तथा तेसं सत्तानं भिय्योसो मत्ताय खरत्तञ्चेव कायस्मिं ओक्कमि, वण्णवेवण्णता च पञ्ञायित्थ। एकिदं सत्ता वण्णवन्तो होन्ति, एकिदं सत्ता दुब्बण्णा। तत्थ ये ते सत्ता वण्णवन्तो, ते दुब्बण्णे सत्ते अतिमञ्ञन्ति – 'मयमेतेहि वण्णवन्ततरा, अम्हेहेते दुब्बण्णतरा'ति। तेसं वण्णातिमानपच्चया मानातिमानजातिकानं भूमिपप्पटको अन्तरधायि। वही, 3.4

[20] ते सत्ता अकट्ठपाकं सालिं परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्ठंसु, तथा तथा तेसं सत्तानं भिय्योसोमत्ताय खरत्तञ्चेव कायस्मिं ओक्कमि, वण्णवेवण्णता च पञ्ञायित्थ, इत्थिया च इत्थिलिङ्गं पातुरहोसि पुरिसस्स च पुरिसलिङ्गं। इत्थी च पुरिसं अतिवेलं उपनिज्झायति पुरिसो च इत्थिं। तेसं अतिवेलं अञ्ञमञ्ञं उपनिज्झायतं सारागो उदपादि, परिळाहो कायस्मिं ओक्कमि। ते परिळाहपच्चया मेथुनं धम्मं पटिसेविंसु। वही, 3.4

[21] अञ्ञतरस्स सत्तस्स अलसजातिकस्स एतदहोसि – 'अम्भो, किमेवाहं विहञ्ञामि सालिं आहरन्तो सायं सायमासाय पातो पातरासाय! यंनूनाहं सालिं आहरेय्यं सकिंदेव सायपातरासाया'ति ! वही, 3.4

[22] सत्ता यो नेसं सत्तो अभिरूपतरो च दस्सनीयतरो च पासादिकतरो च महेसक्खतरो च तं सत्तं उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं – 'एहि, भो सत्त, सम्मा खीयितब्बं खीय, सम्मा गरहितब्बं गरह, सम्मा पब्बाजेतब्बं पब्बाजेहि। मयं पन ते सालीनं भागं अनुप्पदस्सामा'ति। 'एवं, भो'ति खो, वासेट्ठ, सो सत्तो तेसं सत्तानं पटिस्सुणित्वा सम्मा खीयितब्बं खीयि, सम्मा गरहितब्बं गरहि, सम्मा पब्बाजेतब्बं पब्बाजेसि। ते पनस्स सालीनं भागं अनुप्पदंसु। महाजनसम्मतोति खो, वासेट्ठ, 'महासम्मतो, महासम्मतो' त्वेव पठमं अक्खरं उपनिब्बत्तं। खेत्तानं अधिपतीति खो, वासेट्ठ, 'खत्तियो, खत्तियो' त्वेव दुतियं अक्खरं उपनिब्बत्तं। धम्मेन परे रञ्जेतीति खो, वासेट्ठ, 'राजा, राजा' त्वेव ततियं अक्खरं उपनिब्बत्तं। वही, 3.4

[23] सत्तानंयेव एकच्चानं एतदहोसि – 'पापका वत, भो, धम्मा सत्तेसु पातुभूता, यत्र हि नाम अदिन्नादानं पञ्ञायिस्सति, गरहा पञ्ञायिस्सति, मुसावादो पञ्ञायिस्सति, दण्डादानं पञ्ञायिस्सति, पब्बाजनं पञ्ञायिस्सति। यंनून मयं पापके अकुसले धम्मे वाहेय्यामा'ति। ते पापके अकुसले धम्मे वाहेसुं । पापके अकुसले धम्मे वाहेन्तीति खो, वासेट्ठ, 'ब्राह्मणा, ब्राह्मणा' त्वेव पठमं अक्खरं उपनिब्बत्तं। ते अरञ्ञायतने पण्णकुटियो करित्वा पण्णकुटीसु झायन्ति वीतङ्गारा वीतधूमा पन्नमुसला सायं सायमासाय पातो पातरासाय गामनिगमराजधानियो ओसरन्ति घासमेसमाना। ते घासं पटिलभित्वा पुनदेव अरञ्ञायतने पण्णकुटीसु झायन्ति। वही, 3.4

ISSN 2320 – 0871
17 अगस्त 2013

[24] अज्झायका अज्झायका' त्वेव ततियं अक्खरं उपनिब्बत्तं। वही, 3.4

[25] मेथुनं धम्मं समादाय विसुकम्मन्ते पयोजेन्तीति खो, वासेट्ठ, 'वेस्सा, वेस्सा' त्वेव अक्खरं उपनिब्बत्तं। वही, 3.4

[26] खुद्दाचारा खुद्दाचाराति खो, वासेट्ठ, 'सुद्दा, सुद्दा' त्वेव अक्खरं उपनिब्बत्तं। वही, 3.4

[27] चतूहि मण्डलेहि समणमण्डलस्स अभिनिब्बत्ति अहोसि वही, 3.4

[28] खत्तियोपि खो, वासेट्ठ, कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा मिच्छादिट्ठिकोमिच्छादिट्ठिकम्मसमादानो मिच्छा दिट्ठिकम्मसमादानहेतु कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। ब्राह्मणोपि खो, वासेट्ठ...पे॰... वेस्सोपि खो, वासेट्ठ... सुद्दोपि खो, वासेट्ठ... समणोपि खो, वासेट्ठ, कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा मिच्छादिट्ठिको मिच्छादिट्ठिकम्मसमादानो मिच्छादिट्ठिकम्मसमादानहेतु कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। वही, 3.4

[29] खत्तियोपि खो, वासेट्ठ, कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो सत्तन्नं बोधिपक्खियानं धम्मानं भावनमन्वाय दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायति। ब्राह्मणोपि खो, वासेट्ठ...पे॰... वेस्सोपि खो वासेट्ठ... सुद्दोपि खो, वासेट्ठ ... समणोपि खो, वासेट्ठ, कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो सत्तन्नं बोधिपक्खियानं धम्मानं भावनमन्वाय दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायति। वही, 3.4

[30] विज्जाचरण सम्पन्नो सो सेट्ठो देवमानुसेति। वही, 3.4